लेकिन उनमें से अक्सर नहीं जानते हैं।

६:१११

वोटिंग के चेहरे से नकाब कुशाई

लेकिन उनमें से अक्सर नहीं जानते हैं

-६:१११

वोटिंग के चेहरे से नकाब कुशाई

सुची

इस्तिफ्ता(जनमत संग्रह)

मुफ्ती साहब वोट की शरई हैसियत क्या है? स्पष्ट कीजिए, कुछ लोग उसे शहादत(गवाही), वकालत(वकील बनाना), सिफारिश और मशवरा (सलाह) कहते हैं। और उसे वाजिब घोषित करते हैं। क्या वास्तव में न्यायशास्त्र (फिक्ह) की दृष्टि से मत की यही हैसियत है?

लोक तंत्र कुफ्रिया व्यवस्था है, या इस्लामी व्यवस्था। अगर कुफ्रिया व्यवस्था है, तो इसका महत्वपूर्ण स्तंभ मतदान है। क्या इसका महत्त्वपूर्ण स्तंभ जायज हो सकता है?

दो मुसीबतों में से हलकी मुसीबत के तहत मतदान जायज है, या नहीं, कृपया संतोषजनक उत्तर प्रदान करें?

उत्तर

उत्तर अल्लाह की तौफीक से

हरम रुसवा हुआ पीरे हरम की कम निगाही से।

इस्लाम एक पूर्ण जीवन व्यवस्था है, उसके आते ही विश्व में पाए जाने सभी धर्म मंसूख (अप्रचलित) कर दिए गए। चूंकि राजनीति और राजव्यवस्था भी दीन (धर्म) ही का एक भाग है, अतः इस्लामी व्यवस्था के होते हुए सभी राजव्यवस्थाएं अमान्य घोषित किए गए। {اِنَّ الدِّيْنَ عِنْدَ اللّٰهِ الْاِسْلَامُ}(आल इमरान)

जब तक मुसलमानों ने इस वास्तविकता को समझा, और इस पर कार्यरत रहे, प्रतिष्ठा, सम्मान, हुकूमत और हर प्रकार की धार्मिक एवं सांसारिक उन्नतियों से लाभान्वित होते रहे। और बातिल उनका प्रजा एवं शासित बना रहा। लेकिन जब मुसलमानों में सुख की चाह, आलस, इस्लाम-विमुखता उत्पन्न हुई, जिनके परिणाम में हुकूमत की बाग डोर उनके हाथ से निकल गया, तो जिस तरह उनकी कार्यशैली और शिष्टाचार में गिरावट आई, उसी प्रकार उनके विचार, विचार-धारा धारणाएं भी गिरावट के शिकार हुए। फिर यह श्रृंखला चलता रहा, यहां तक के शत्रु विजय और मुसलमान पराजय, शत्रु राजा और मुसलमान प्रजा बन गए।

[وَمَنْ يَّبْتَغِ غَيْرَ الْاِسْلَامِ دِيْنًا فَلَنْ يُّقْبَلَ مِنْهُ ۚ وَهُوَ فِى الْاٰخِرَةِ مِنَ الْخٰسِرِيْنَ]

(आल इमरान)

जब नौबत यहां तक पहुंची, तो चूंकि इस कौम की मिट्टी में अंगारा मौजूद था, और बहुत संभव था, कि यह अंगारा ज्वालामुखी बन कर उठे, और अतित के सभी करतूतों का शत्रु से एक-एक करके बदला लिया जाए। इसलिए उन्होंने इस परिवर्तन को यथासंभव असंभव बनाने का प्रयत्न किया, और विभिन्न प्रकार की शाजिशें कीं।

हर नफस डरता हूं इस उम्मत की बेदारी से मैं।
है हकीकत जिसके दीं की इहतिसाबे कायनात।

उन्हीं साजिशों में से लोक-तंत्र नामक एक आकर्षक राजव्यवस्था भी है, जिसका ज़ाहिर बड़ा सुंदर और दिल को भाने वाला है, लेकिन भीतरी भाग उतना ही घटिया और बेतुका है। इसकी वास्तविकता दो शब्दों में स्पष्ट किया जाए, तो यह जनता की हुकूमत है, इस संक्षेप की व्याख्या यह है, कि एक प्रतिनिधि हुकूमत के लिए प्रत्याशी बनकर जनता के सामने आता है, अगर जनता की बहुमत उसे मिल जाए तो सफल घोषित क्या जाता है, और हुकूमत की बागडोर उसके हवाले की जाती है, इसी को निर्वाचन और जनता के इस चयन को मत (वोट) कहा जाता है। इसमें वैसे तो कोई बात आपत्तिजनक दिखाई नहीं देती। लेकिन यह अपने भीतर झूठ धोखा का एक सागर लिए हुए है।

चुनांचे लोकतंत्र का सबसे बड़ा स्तंभ यह है, कि उसमें जनता को सर्वोपरि समझा जाता है। और उसमें जनता का हर फैसला जो बहुमत के आधार पर हो मानना जरूरी, और ना काबिले तंसीख समझा जाता है। बहुमत के उस फैसले पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाई जाती, चाहे वह कुरआन और सुन्नत के विरुद्ध ही क्यों न हो, यदि किसी स्थान पर ऐसा क़ानून बन भी जाए, जो शरियत का आदेश है, उसका यह कारण नहीं होगा कि, klयह अल्लाह का आदेश है, उसका कारण केवल और केवल यह होगा, कि उसको बहुमत प्राप्त है, इसलिए बहुमत जब चाहे उस कानून के हटा सकता है, जैसेकि प्रभुत्व अल्लाह सर्वशक्तिमान के बजाय जनता की संपत्ति हो कर रह जाती है। इसी बहुमत की प्राप्ति का नाम वोटिंग है। अब जबकि बात यह है, तो धर्म का राजनीति से कोई संबंध ही नहीं होगा, तो यही विचाराधारा और धारणा बनाया गया कि, धर्म

मनुष्य का निजी मामला है। उसके निजी जीवन से संबंधित है। राज और शासन के मामलात से उसका कोई संबंध नहीं है। (इससे हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं)

और इस प्रकार की बहुत सी खराबियों को यह राज-व्यवस्था अपने भीतर लिए हुए है। होता तो यह कि इसके भेद को हमारे उलमा खोलकर लोगों को इससे सूचित करते। और वास्तविक इस्लामी व्यवस्था की दावत देते। लेकिन चूंकि युग के परिवर्तन से मार्गदर्शकों के विचार भी परिवर्तित हो गए। चूनांचे पहले जिस पद का उद्देश्य यह था कि, वह दीन, धर्म पर लगने वाले धूल को दूर करता, इस्लाम के सुंदर चेहरे पर लगने वाले हर धूल को हटाता, चाहे इस कारण से प्राण, धन खतरा से ग्रसित हो, इसी पद पर कुछ दशकों से कुछ ऐसे लोग बैठे हुए हैं, जो बजाय इसके कि अपने अस्लाफ के तरीक़े पर चलकर, वह भी इस्लाम की रक्षा हेतु अपने धन, प्राण की परवाह किए बिना हक और सत्य को हर परिस्थिति में स्पष्ट करते, तहरीफुल गालीन और इंतिहालुल मुब्तिलीन का पर्दा फाड़ते, लेकिन उन्होंने उसके बजाय उसी धूल को इस्लाम का अंग बताना शुरु कर दिया, जिस कारण से इसकी असल हकीकत बदलकर रह गई।

खुद बदलते नहीं कुरआन को बदल देते हैं।

हुए किस दर्जा फकीहाने हरम बे तौफीक।

उन्हीं अनुचित प्रयासों में से लोकतंत्र पर इस्लाम का ठप्पा लगाने का प्रयास है, जिसमें उन्हें बहुत हद तक सफलता भी प्राप्त हो गई। लेकिन चूंकि हुज़ूर सल्लल्लाहू अलैहि वसल्लम की भविष्यवाणी के अनुसार एक गिरोह सदैव हक की रक्षा के लिए मैदान में डटा रहेगा, चाहे अमल का मैदान हो, या चाहे इल्म, ज्ञान का मैदान, उस गिरोह द्वारा उनके इस धोखे की हकीकत स्पष्ट होकर सामने आई। और लोगों को धींरे-धींरे यह बात समझ में आने लगी, यह झूठा लोकतंत्र किसी राजतंत्र और साम्यवाद(comunism) से कम नहीं है।

मेरी ओर से उपहार के रूप में एक हदीस इन मार्गदर्शकों की सेवा में पेश है। इससे अधिक बोलना ज़रूरी नहीं समझता।

《من كان يؤمن بالله واليوم الآخر فليقل خيرا أو ليصمت》

जो व्यक्ति अल्लाह पर और आखिरत के दिन पर ईमान रखता है। उसे चाहिए कि भलाई की बात करे या चुप रहे।

वोट की शरई हैसियत

उपर्युक्त तम्हीद से यह बात भली-भांति स्पष्ट हो गई है कि, लोकतांत्रिक व्यवस्था में वोट रीढ़ की हड्डी की तरह है। क्यूंकि उसका सभी आश्रय लोगों की राय की प्राप्ति पर है, और उसका मार्ग वोट ही है। अतः उसकी शरई हैसियत बताने की आवश्यकता है।

मतदान चूंकि इसी कुफ्र पर आधारित लोकतांत्रिक व्यवस्था का अंग है, इसी लिए यह वास्तव में नाजायज और हराम ही होना चाहिए, चूनांचे वहबा जुहैली रहिमहुल्लाह लिखते हैं।

[في الجملة إن السيادة في الديمقراطية الغربية للأمة مطلقا،وفي الإسلام هي للشريعة والأمة معا...هذا الفارق الجوهري بين النظامين يجعل المسلمين في حرج،وعليه الإمتناع مادام النائب يملك التحليل والتحريم ومخالفة أحكام الشريعة،لأن المشرع في الإسلام هو الله تعالى مباشرة أو ما أوحى به إلى رسول الله صلى الله عليه وسل]

(मौसूअतुल फिक्हिल इस्लामी वल कजायल असरिया)

चूंकि वर्तमान युग में मुसलमान बहुत ही बेबसी की हालत में हैं, और इस्लामी खिलाफत के सफल प्रयासों के प्रभाव दिखाई नहीं देते, ऐसे समय में मतदान से अलग-थलग रहना मुसलमानों के लिए अधिक बर्बादी का कारण बन सकता था। इसलिए फिक्ह के नियम

" إذا تعارض المفسدتان روعي أعظمهما ضررا بارتكاب أخفهما"

(अलअशबाह) के तहत वोट देने की बात कही गई थी।

चूनांचे मौलाना अशरफ अली थानवी रहिमहुल्लाह के एक बंध में इसकी ओर इशारा है।

और यह शरई, अक़्ली (बुद्धि पर आधारित) नियम है कि, जहां दो प्रकार के हानि इकट्ठे हो जाएं, एक बहुत अधिक कठोर हो, दूसरा उससे कम कठोर हो, तो कम कठोर को चयनित करना चाहिए। अर्थात जहां दोनों अंश में खराबी हो, मगर एक में अधिक कठोर, दूसरा में हल्का हो, तो अधिक कठोर से बचने के लिए, या उसको दूर करने के लिए हल्का को सहन कर लिया जाता है। और है तो यह भी बड़ा मगर अन्य खराबियों की तुलना में कम है। बहुत ही दुःख की बात है, कि वर्तमान युग में मुसलमानों का ऐसा संगठन जो शुद्ध इस्लामी गिरोह, बलवान व शक्तिशाली हो, न

तो मौजूद है। और न ही समीप में उसकी आशा है। इसलिए ऐसी स्थिति में अस्थायी आदेश यही है, और उसके सिवा कोई चारा नहीं है, कि मुसलमान वर्तमान जमाअतों में से किसी जमाअत में दाखिल हों। और शरई नियमों के अनुसार उनमें जो खराबियां हों उनको दूर करें। और यदि उनमें से एक में संशोधन आसान हो, और दूसरी का संशोधन कठिन हो, तो उपर्युक्त नियम के अनुसार उसी में दाखिल हो, जिस में संशोधन आसान है। (मुरौवजा सियासत के शरई अहकाम)

उपर्युक्त नियम (अहवनुल बलियतैन) के तहत लगने वाले हुक्म में यह स्पष्ट करना ज़रूरी होता है, कि वास्तव में यह नाजायज ही है, लेकिन हानि को हटाने के लिए इसको अपनाया जा रहा है। यदि यह स्पष्ट नहीं किया जाए, तो सार्वजनिक विचार उसके पाप, नाजायज न समझने का बन जाता है। और जहां मजबूरी न हो, वहां भी लोग वह काम करने लगते हैं। उसका स्पष्ट उदाहरण चित्र का मसअला है। जिसकी कठोर ज़रूरत पासपोर्ट इत्यादि के लिए उलमा ने अनुमति दी। लेकिन जिस तरह उसके जायज होने का प्रचार किया गया, उसी कठोरता के साथ उसके मूलतः हराम होने को स्पष्ट करना भी ज़रूरी था, लेकिन उस स्पष्टीकरण में कमी आ गई, और इस हराम काम की अश्लीलता कम होती गई, और बात बहुत आगे तक पहुंच गई।

ठीक उसी तरह वोट के मसअले में भी हुआ, कि लोकतंत्र की हकीकत और उसके पर्दे के पीछे की खराबीयों को लिखकर, बोलकर, सामान्य और विशेष वर्गों में नहीं खोला गया, जिसका परिणाम यह हुआ, कि एक बहुत बड़े आलिमे दीन ने वोट को इस्लामी घोषित करते हुए, उसे जाइज़ की हद से भी आगे बढ़ाकर उसे एक शरई फ़र्ज़ घोषित कर दिया।

वह महोदय यह शरई फैसला इसलिए अंकित किए कि, इस राज-व्यवस्था को अधिकांश दीनदार लोग इस्लाम-विरोधी समझकर निर्वाचन के इस ड्रामे में भाग नहीं लेते, लेकिन ऐसे आलिम पर बहुत आश्चर्य है।

चूनांचे वह फरमाते हैं:

" पढ़े लिखे दीनदार मुसलमानों को भी इस ओर ध्यान नहीं रहता, कि यह खेल केवल हमारे सांसारिक लाभ, हानि और आबादी, बर्बादी तक नहीं रहता, बल्कि इसके पीछे कुछ फरमांबरदारी और ना फरमानी, गुनाह और सवाब भी है। जिसका प्रभाव इस दुनिया के बाद भी

हमारे गले का हार, नरक का अजाब बनेंगे, या फिर स्वर्ग के दरजात और परलोक की मुक्ति का साधन बनेंगे।"

फिर उनकी इस स्पष्ट गलती में भी उन्हीं के पीछे चलते हुए बाद वाले लगभग सभी ने वोट की वही हैसियत बताई, जो हजरत ने निर्धारित की थी, और कुछ ऐसा हुआ, जिसके बारे में इब्ने आबिदीन (अल्लामा शामी) लिखते हैं।

قلت:وقد يتفق نقل قول في نحو عشرين كتابا من كتب المتأخرين،ويكون القول خطأ،أخطأ به أول واضع له،فيأتي بعده وينقله عنه،وهكذا ينقل بعضهم عن بعض

(शरह ऊकूदे रसमिल मुफ्ती)

यहां उद्देश्य उन हैसियतों का विश्लेषण करना है, जो मुफ्ती साहब या अन्य लोगों ने निर्धारित की हैं।

लेकिन उससे पहले बुनियादी तौर पर लोकतंत्र, निर्वाचन, और इस्लाम से इनके टकराव का चर्चा करना उचित होगा, जिसकी ओर कुछ इशारा पहले भी किया गया, इसके बारे में अपनी ओर से कुछ कहने के बजाए अधिकतर उन बातों को नकल करना उचित समझता हूं, जो स्वयं उम्मत के अकाबिरीन (बड़े लोगों) ने लिखी हैं।

मुफ्ती रशीद अहमद लुधियानवी रहिमहुल्लाह लिखते हैं।

" इस्लाम में पश्चिमी लोकतंत्र का कोई अस्तित्व नहीं, इसमें कई गिरोहों (सत्ताधारी दल एवं विपक्षी दल) का होना जरूरी है, जबकि क़ुरआन इस ख्याल का रद करता है।

{وَاعۡتَصِمُوۡا بِحَبۡلِ اللّٰهِ جَمِيۡعًا وَّلَا تَفَرَّقُوۡا}

(आल इमरान)

इसमें सभी फैसले बहुमत के आधार पर होते हैं, क़ुरआन इस विचार-धारा को जड़ से उखाड़ फेंकता है।

{وَاِنۡ تُطِعۡ اَكۡثَرَ مَنۡ فِى الۡاَرۡضِ يُضِلُّوۡكَ عَنۡ سَبِيۡلِ اللّٰهِ‌ؕ اِنۡ يَّتَّبِعُوۡنَ اِلَّا الظَّنَّ وَاِنۡ هُمۡ اِلَّا يَخۡرُصُوۡنَ}

(अलअनाम)

यह अस्वाभाविक, प्रकृति के विरुद्ध व्यवस्था यूरोप से आया हुआ है, जिसमें सरों को गिना जाता है, तौला नहीं जाता। इसमें पुरुष, महिला, बूढ़े, जवान, सामान्य, विशेष, ज्ञानी, अज्ञानी, बुद्धिमान, मंदबुद्धि सब एक ही भाव तुलते हैं। जिस प्रत्याशी के पल्ले वोट अधिक पड़ जाएं, उसे सफल घोषित किया जाता है। और दूसरे को पूर्ण रूप से विफल समझा जाता है। उदाहरणतया किसी आबादी के पचास आलिमों, बुद्धिमानों, ज्ञानियों ने एक-जुट होकर एक व्यक्ति को वोट दिए, मगर उनकी तुलना में क्षेत्र के भंगियों, बे दीनो और लुच्चों ने उसके विपक्षी प्रत्याशी को वोट दिए, जिनकी संख्या इक्यावन हो गई, तो यह प्रत्याशी सफल, और क्षेत्र के सभी अच्छे, बुरे का मालिक बन गया। यह काल्पनिक बात नहीं है, बल्कि एक हकीकत है।

" आगे चलकर लिखते हैं,

"फिर मत प्राप्त करने के लिए हर उचित, अनुचित विधि अपनाना लोकतंत्र का ज़रूरी अंग है। प्रिय पाठको! सत्ता के लिए मानवता, यहां तक कि खूनी संबंध तक को भुला दिया जाता है। हर पक्ष, विपक्ष को हराने के लिए धन, पानी की तरह बहाया जाता है। चुनांचे हर निर्वाचन में अरबों रुपए बरबाद होते हैं। उससे बढ़कर धोंस, धांधली, धोखा, घुस, हर प्रकार के हथकंडे अपनाए जाते हैं। और कोई हथकंडा सफल न हो तो, विपक्षी मतदाताओं को डराया, धमकाया, बल्कि क़त्ल तक कर दिया जाता है।"

फिर लिखते हैं:

"फिर राष्ट्र के यह प्रतिनिधि असेंबली, पार्लियामेंट में बैठकर क्या कुछ करते हैं, किसी से गुप्त नहीं हैं।"

और लिखते हैं

यह सभी फल और पत्ते पश्चिमी लोकतंत्र के गंदे वृक्ष की पैदावार हैं। इस्लाम में इस कुफ्रीया व्यवस्था की कोई गुंजाइश नहीं है। और न ही इस विधि से कयामत तक इस्लामी व्यवस्था आ सकता है। "الجنس يميل الى الجنس" के अनुसार जनता जिनमें अधिकांश बेदीन लोग हैं, अपनी ही तरह के प्रतिनिधि चयनित करके एसेंबली में भेजते हैं।

इस्लाम में शुराई व्यवस्था है, जिसमें अहले हल्ल व अक्द चिंता, विचार करके एक अमीर का चयन करते हैं। चुनांचे हज़रत उमर फारुक रजियल्लाहु अन्ह ने मृत्यु के समय 6 अहले हल्लो अक्द की शुरा बनाई, जिन्होंने आपसी सहमति से हज़रत उस्मान को चयनित किया।

इस पवित्र व्यवस्था में मानव के सरों को गिनने के बजाय, मानवता का तत्त्व तौला जाता है। इसमें एक नेक प्रबंधक व्यक्ति की सलाह लाखों, बल्कि करोड़ों व्यक्तियों की राय पर भारी हो सकती है।

(अहसनुल फतावा)

मौलाना यूसुफ लुधियानवी लिखते हैं:

"कितना दुःखद और सैकड़ों मातम योग्य है यह दृश्य, कि जिन लोगों के कंधों पर दीन, वतन के नेतृत्व और मार्गदर्शन का बोझ है। उनकी निगाह से मार्ग और मंज़िल का रस्म ओझल हो रहा है। और वह पार्टी और गिरोह आधारित भूल भुलैयों में भटक रहे हैं। इस कड़वी बात बोलने पर क्षमा का इच्छुक हूं। लेकिन दिल का दर्द प्रकट किए बगैर चारा नहीं है।

परिस्थितियों की कठोरता मजबूर कर रही है, कि किसी लाग लपेट के बगैर साफ और स्पष्ट रूप में बताया जाए।"

दूसरी जगह बड़े विस्तार से लिखते हैं:

"कुछ गलत धारणाएं, सार्वजनिक स्वीकृति का ऐसा प्रमाण प्राप्त कर लेते हैं, कि बड़े-बड़े बुद्धिमान, उस सार्वजनिक स्वीकृति के आगे सर झुका देते हैं। या तो उन गलतियों का उनको आभास ही नहीं होता, या अगर गलती का एहसास हो भी जाए, तो बोलने का साहस नहीं कर सकते। विश्व में जिन बड़ी-बड़ी गलतियों का चलन है, उनके बारे में बुद्धिमान इसी मुसीबत से ग्रसित हैं। उदाहरणतया मूर्ति-पूजा को ही ले लीजिए, एक खुदा ला शरीक लह को छोड़कर, पत्थरों के स्वयं-निर्मित मूर्तियों को सजदा करना कितना गलत और बातिल है। मानवता का इससे बढ़कर अपमान क्या होगा। मनुष्य को जोकि मखलुकात में सबसे बेहतर है, बेजान मूर्तियों का भक्त बनाया जाए, और इससे बढ़कर अन्याय क्या होगा, कि अल्लाह के साथ मखलूक को भक्ति में सम्मिलित किया जाए। लेकिन मुश्रिक बहुदेववादी बंधुओं के बुद्धिमानों को देखो, कि वह स्वयं-निर्मित मूर्तियों, पत्थरों, वृक्षों, पशुओं इत्यादि को सजदा करते हैं। पूर्ण बुद्धि के बावजूद उनका हृदय इसके विरुद्ध एहतेजाज (protest) नहीं करता। और न ही वह उसमें किसी बुराई का आभास करते हैं।

इसी गलत सार्वजनिक स्वीकृति का सिक्का आज लोकतंत्र में चल रहा है। लोकतंत्र नए युग का वह बड़ा बुत है, जिसकी पूजा सर्वप्रथम पश्चिमी बुद्धिमानों ने आरम्भ की। चूंकि वह आसमानी मार्गदर्शन से वंचित थे, इसलिए हकीकत तक न पहुंचने वाली उनकी बुद्धि ने अन्य राज-व्यवस्थाओं के विरोध में लोक-तंत्र का बुत बना लिया। फिर इसको उदाहरणीय शासन घोषित करके, इसका सुर पूरे विश्व में ऐसे ऊंचे पैमाने पर फूंका, कि पूरे विश्व में इसका डंका बजने लगा। यहां तक कि मुसलमानों ने भी पश्चिम का अनुसरण करते हुए लोकतंत्र की माला जपनी आरम्भ कर दी। कभी यह नारा लगाया गया, "इस्लाम लोकतंत्र का अलमबरदार है" और कभी इस्लामी जम्हूरियत (लोक-तंत्र) की परिभाषा गढ़ी गई, हालांकि पश्चिम लोकतंत्र के जिस बुत का पुजारी है, उसका न केवल यह कि इस्लाम से कोई संबंध नहीं है। बल्कि वह इस्लामी राजनीति के विचारधाराओं, धारणाओं का भी विरोधी है। इसलिए लोकतंत्र के साथ इस्लाम का पैवंद लगाना, या उसे इस्लामी घोषित करना बिल्कुल गलत है।

सभी जानते हैं कि, इसलाम खिलाफत की धारणा का प्रचारक है, जिसके अनुसार इस्लामी हुकूमत का मालिक, रसुलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के खलीफा होने की हैसियत से अल्लाह की धरती पर इस्लामी हूकमों को लागू करने का ज़िम्मेदार है--।-

उसके विपरीत लोकतंत्र में जनता की प्रतिनिधित्व का तसौवुर कार्यरत है, चुनांचे लोकतंत्र की परिभाषा इन शब्दों में की जाती है,

"लोकतंत्र वह राजव्यवस्था है, जिसमें जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों की बहुमत रखने वाला राजनीति दल शासन चलाता है। और जनता के सामने उत्तरदायी होता है।

इससे इस्लाम की खिलाफत व्यवस्था और पश्चिम का निर्मित लोकतंत्र का रास्ता पहले ही कदम पर अलग-अलग हो जाता है।

* खिलाफत रसूलूल्लाह की नियाबत का तसौवुर पेश करती है, और लोकतंत्र जनता की नियाबात का तसौवुर पेश करता है।

*खिलाफत मुसलमानों के शासकों पर इकामते दीन (धर्म स्थापित करने) की जिम्मोरी डालती है। अर्थात इस्लाम की न्याय-व्यवस्था को लागू करने की जिम्मदारी शासकों पर है। जबकि लोकतंत्र को अल्लाह व रसूल से न कोई मतलब है, और न दीन, इकामते दीन से कोई मतलब है।

उसका काम जनता की इच्छाओं को पूरा करना है। और वह उनकी इच्छानुसार क़ानून बनाने का पाबंद है।

*इस्लाम खिलाफत के पद के लिए विशेष शर्तें लगाता है। जैसे मुसलमान हो, बुद्धिमान हो, बालिग (वयस्क) हो, सलीमुल हवास (उसका मानसिक संतुलन ठीक) हो, मर्द हो, आदिल हो, शरई अहकाम का आलिम हो, लोकतंत्र इन शर्तों को नहीं मानती, लोकतंत्र यह है कि जो दल भी व्यर्थ की आशा दिलाकर एसेंबली में अधिक सीटें प्राप्त कर ले, उसको जनता-प्रतिनिधित्व का अधिकार है। लोकतंत्र को इससे कोई मतलब नहीं, कि जनता का बहुमत प्राप्त करने वाले मुसलमान हैं, या काफिर, अच्छे हैं या बुरे, परहेज़गार हैं या बदकार, शरीयत के हुकमों को जानने वाले हैं या बिल्कुल जाहिल, योग्य हैं या अयोग्य।

कहने का तात्पर्य है कि लोकतंत्र में जनता की पसंद ना पसंद ही कसौटी है। और इस्लाम ने जिन गुणों और शर्तों का शासकों में पाया जाना ज़रूरी समझा, वह सब शर्तें जनता की बहुमत प्राप्त करने के बाद बेकार हैं। और जो राजनैतिक व्यवस्था इस्लाम ने बनाए हैं, वह लोकतंत्र में बेकार हैं।(न उज़ू बिल्लाह)

* खिलाफत में शासकों के लिए सर्वोच्च कानून क़ुरआन व सुन्नत है। और अगर मुसलमानों का अपने शासकों से झगड़ा हो जाए, तो उसको अल्लाह व रसूल की ओर लौटाया जाएगा। और

किताबो सुन्नत के प्रकाश से उसका निर्णय किया जाएगा। जिसकी पाबंदी हाकिम (राजा) और महकूम (प्रजा) दोनों पर ज़रूरी होगी। जबकि लोकतंत्र का फतवा है, कि देश का संविधान सबसे पवित्र दस्तावेज़ है। और सभी झगड़ों में संविधान की ओर लौटना ज़रूरी है।

यहां तक कि अदालतें भी संविधान के खिलाफ फैसला नहीं कर सकतीं। लेकिन देश का संविधान, कानून, अपने सभी पवित्रता के बावजूद, जनता के चयनित प्रतिनिधियों के हाथों का खिलौना है। वह लक्षित बहुमत के आधार पर उसमें जो चाहें, परिवर्तन, संशोधन करते फिरें। उनको कोई रोकने वाला नहीं। और देश के नागरिकों के लिए जो क़ानून चाहें, बना डालें कोई उनसे पूछने वाला नहीं .है।

*विश्व के सभी बुद्धिमानों का निर्णय है, कि किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए उस कार्य के माहिरों से मशवरा लिया जाता है। इसी नियम के अनुसार इस्लाम ने खलीफा के चयन करने की म्मदारी अहले हल्ल व अक्द पर डाली है, जो हुकूमत की बारीकियों को समझते हैं। और यह जानते हैं, कि इसके लिए सबसे उचित कौन व्यक्ति हो सकता है।

लेकिन लोकतंत्र के मंदिर के ब्राह्मणों का फतवा है, कि शासक के चयन का अधिकार माहिरों को नहीं, बल्कि जनता को है। उनके बजाय जनता से मशवरा लिया जाता है। किसी भी छोटे से छोटे संस्था को चलाने के लिए उसके माहिरों से मशवरा लिया जाता है। लेकिन यह कैसा अन्याय है, शासन की संस्था जो सभी संस्थाओं की मां है, और देश के सभी संसाधन जिसके क़ब्जे में हैं, उसको चलाने के लिए माहिरों से नहीं, बल्कि जनता से सलाह ली जाती है। जबकि जनता में से प्रतिशत लोग यह नहीं जानते, कि हुकूमत कैसे चलाई जाती है। उसकी पालिसियां कैसे तैयार की जाती हैं। और राज करने के नियम, विधि और ऊंच-नीच क्या हैं। एक जानकार बुद्धिमान की राय को एक घसियारे की राय के बराबर गिनना, और एक कंदए ना तराश की राय को एक बहुत बुद्धिमान प्रबंधक के राय के समान घोषित करना, यह वह ड्रामा है जो विश्व को पहली बार लोकतंत्र के नाम से दिखाया गया है।

वास्तव में जनता की हुकूमत, जनता के लिए, जनता के मशवरा से, के शब्दों को सिर्फ जनता को उल्लू बनाने के लिए गढ़े गए हैं। अन्यथा वास्तविकता यह है, कि लोकतंत्र में न तो जनता की राय का आदर किया जाता है, और न ही जनता की बहुमत के प्रतिनिधि हुकूमत करते हैं। क्योंकि लोकतंत्र में इस पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाई जाती, कि जनता का सहयोग प्राप्त करने

के लिए कौन कौन से नारे लगाए जाएंगे। और किन माध्यमों को प्रयोग किया जाएगा। जनता को उभारने के लिए कौन कौन से हथकंडे अपनाए जाएंगे। जनता को गुमराह करने के लिए व्यर्थ की जो आशा दिलाएं, उन्हें लुभाने के लिए जो भी साधन अपनाएं, वह सभी लोकतंत्र में उचित हैं।

अब एक व्यक्ति चाहे कैसा ही संसाधन प्रयोग करके, अपने विपक्ष की तुलना में अधिक वोट प्राप्त करने में सफल हो जाए, उसको जनता का प्रतिनिधि समझा जाता है। जबकि जनता को भी पता है, कि इसने जनता के पसंद करने पर मत प्राप्त नहीं किया है। बल्कि रुपए, पैसे से वोट खरीदे हैं। धांधली के तरीके अपनाए हैं। और गलत वादों से जनता को धोखा दिया है। लेकिन यह सब होने के बावजूद भी यह व्यक्ति न तो रुपए पैसे का प्रतिनिधि कहलाता है, और न ही धांधली का चयनित, और न झूठ धोखा का प्रतिनिधि कहलाता है, बल्कि यह कौम का राष्ट्र का प्रतिनिधि कहलाता है। न्याय कीजिए कि राष्ट्र का प्रतिनिधि इसी स्वभाव के मनुष्य को कहा जाता है। क्या ऐसे व्यक्ति को देश राष्ट्र से कोई सहानुभूति हो सकती है।

जनता प्रतिनिधित्व का तात्पर्य तो यह होना चाहिए, कि जनता किसी को देश व राष्ट्र हित में अति-लाभदायक समझकर, उसे बिल्कुल स्वतंत्र रूप में चयनित करें। न उस प्रत्याशी की ओर से किसी प्रकार का लोभन, प्रोत्साहन हो, न कोई दबाव हो, न जाति, और राष्ट्र का वास्ता हो, न रुपए पैसे का खेल हो।

कहने का तात्पर्य यह है, कि उस व्यक्ति की ओर से अपने दिखावे का कोई सामान न हो, और जनता को मूर्ख बनाने का उसके पास कोई साधन न हो, कौम ने उसको केवल इसलिए चुना हो, कि यह अपने क्षेत्र का अति-योग्य मनुष्य है। यदि ऐसा निर्वाचन हुआ करता, तो निसंदेह यह जनता का चयन कहलाने योग्य होता, और उस व्यक्ति को राष्ट्र का चयनित प्रतिनिधि कहना सही होता। लेकिन हमारे यहां जिस लोकतंत्र का चलन है, यह जनता के नाम पर जनता को धोखा देने का खेल है। और बस,

कहा जाता है, कि लोकतंत्र में जनता की बहुमत को, अपने प्रतिनिधि द्वारा शासन करने का अधिकार दिया जाता है, यह भी केवल एक धोखा का नारा है। अन्यथा अमली रुप में यह हो रहा है, कि लोकतंत्र के गलत नियमों द्वारा, एक सीमित सी अल्पमत, बहुमत की गर्दनों पर हावी हो जाती है।

उदाहरणतया:- कल्पना कीजिए कि एक निर्वाचन क्षेत्र में वोटों की कुल संख्या पौने दो लाख है, पंद्रह प्रत्याशी हैं, उन में से एक व्यक्ति 30 हजार वोट प्राप्त करता है, जिनका अनुपात दूसरे प्रत्याशियों को प्राप्त होने वाले वोटों से अधिक है। जबकि उसने मात्र 16 प्रतिशत प्राप्त किए हैं, इस प्रकार 16 प्रतिशत के प्रतिनिधि को 84 प्रतिशत पर हुकूमत का अधिकार प्राप्त हुआ। बताइए यह लोकतंत्र के नाम पर एक सीमित अल्पसंख्यक को बड़ी बहुसंख्यक पर हावी करने का षड्यंत्र नहीं है तो और क्या है?

कहने का तात्पर्य यह है, कि लोकतंत्र के नाम से जनता की हुकूमत, जनता के लिए का दावा केवल एक धोखा है, और इस्लाम के साथ इसका पैवंद करना धोखा पर धोखा है, इस्लाम का नवीन लोकतंत्र से कोई संबंध नहीं है, और न लोकतंत्र का इस्लाम से कोई संबंध है, दोनों विलोम हैं, एक दूसरे के विपरीत हैं, इकट्ठा नहीं हो सकते।

आगे एक इस्तिफ्ता के अन्तर्गत लिखते हैं:

"सर्वप्रथम यही बात इस्लाम की आत्मा और मनोदशा के विरुद्ध है, कि कोई सत्ता के किसी पद के लिए अपने को पेश करे। इस्लाम उन लोगों को शासन करने का योग्य समझता है, जो उसको एक पवित्र अमानत समझते हों। और वह इससे डरते हों, कि इस अमानत का हक भी अदा कर सकेंगे यानहीं, इसके विपरीत वर्तमान निर्वाचन विधि सत्ता को एक पवित्र अमानत घोषित करने के बजाय, सत्ता के लोभी लोगों के हाथ का खिलौना बना देता है। हदीस में है हम ऐसे व्यक्ति को पद नहीं देते जो इसका तलबगार हो, या इसकी चाहत रखता है।" (बुखारी व मुस्लिम)

इन्हीं कुछ बातों पर बस करता हूं। तफसील के लिए देखिए! आपके मसाइल और उनका हल, अहसनुल फतावा, सियासत और इस्लाम, इत्यादि। आशा है कि उपर्युक्त कुछ बातें हकीक़त खोलने में बहुत हद तक प्रभावी हुई होंगी।

अब चलते हैं वोट की उन हैसियतों की ओर जो मुफ्ती महोदय या अन्य लोगों ने निर्धारित की हैं।

वोट शहादत की हैसियत से:

मतदान की पहली हैसियत जिसपर सबसे अधिक बल दिया गया, वह शहादत यानी गवाही की है, **चूनांचे मुफ्ती महोदय लिखते हैं कि,**

"मतदान की एक हैसियत शहादत अर्थात गवाही की है, कि वोटर जिस व्यक्ति को वोट दे रहा है, उसके बारे में यह गवाही दे रहा है, कि यह व्यक्ति इस काम की योग्यता रखता है। और दीनदारी और अमानतदारी भी। यदि हकीकत में उस व्यक्ति में यह गुण नहीं हैं, और मतदाता जानबूझ कर उसको मतदान करता है, तो यह झूठी गवाही है। जो कठोर-बड़ा पाप है। और दुनिया आखिरत का वबाल है।.

.आगे लिखते हैं

निष्कर्ष यह है कि मत की शरई हैसियत कम से कम एक गवाही की है। जिसका छुपाना भी हराम है एवं लिखते हैं, क़ुरआन तथा सुन्नत की दृष्टि से यह स्पष्ट हुआ की अयोग्य ज़ालिम पापी और दुष्ट व्यक्ति

को वोट देना बड़ा पाप है। उसी प्रकार एक अच्छे नेक योग्य व्यक्ति को मत देना बड़ा सवाब बल्कि एक शरई कर्तव्य है। जैसे क़ुरआन ने झूठी गवाही को हराम घोषित किया है, वैसे ही सच्ची गवाही को वाजिब और ज़रूरी घोषित किया है।

वोट के शहादत (गवाही) होने पर एक नजर

सबसे पहले शरई शहादत की परिभाषा जानते चलें!

[هي إخبار بحق للغير على الغير على مشاهدة لا على ظن]

(मुल्तकल अब्हुर)

[هي في اصطلاح الشرع عبارة عن إخبار بصدق مشروط فيه مجلس القضاء ولفظة الش **तब्यीनुल** हकाइक)

[هي لغة:خبر قاطع،وشرعا:إخبار صدق لإثبات حق بلفظ الشهادة في مجلس القاضي ولو بلا دعوى كما في عتق الأمة]

(अद्दुर्रुल मुख़्तार)

शहादत की परिभाषा में कुछ अंग पाए जाते हैं

1.-इख़बार(खबर देना)

2.दूसरे के हक से संबंधित होना

3. न्यायपालिका की बैठक

4. गवाही का शब्द

अब देखना है कि वोट में इन में से कोई अंग पाया जा रहा है या नहीं।

पहला अंग इख़बार (खबर देना)

वोट इख़बर नहीं है, बल्कि इंशा है, उसकी दलील यह है, कि ईखबार कहते हैं। भूतकाल में हुए किसी चीज की खबर देना, और वोट देने में यह होता है, कि जो व्यक्ति अब तक सत्ता के पद पर नहीं आया है, मतदान द्वारा उसे पद पर बैठाया जाता है। प्रत्याशियों के लिए सत्ता की बागडोर संभालने में वोटरोंका यह काम ही प्रभावशाली होता है। और इंशा ऐसे ही मामला को कहते हैं, जो पहले से न पाया जाए, बल्कि कर्ता के कार्य के पश्चात वह वजूद में आए।

एक संदेह:- कोई यह कहे कि वोट इखबार ही है, क्योंकि इसमें इस बात की खबर दी जा रही है, कि प्रत्याशी इस पद का योग्य है।

संदेह का जवाब:- इस संदेह का उत्तर यह है, कि यदि बात इतनी ही थी, तो वोट द्वारा सिर्फ उसकी योग्यता साबित होती है, तो फिर प्रत्याशी को पद पर पहुंचाने वाली कोई तीसरी चीज होती। लेकिन यहां ऐसा नहीं है, बल्कि बहुमत की सूरत में वोट ही प्रत्याशी को पद पर पहुंचाता है। इसलिए यह कहना सही नहीं है। यदि इस बात को सही भी मान लें, कि वोट प्रत्याशी की योग्यता की इख़्बार का नाम है, तो शरियत में उसे तजकिया के नाम से याद किया गया है, अब हमें यह जानना पड़ेगा, कि वोट तजकिया है या नहीं। यह जानने से पहले तजकिया की परिभाषा और उसके प्रकार जानते चलें।

तजकिया दो प्रकार के होते हैं

1. तजकिया-ए-सिर 2. तजकिया-ए-अलानिया

तजकिया-ए-सिर

[التزكية في السر أن يبعث القاضي أمينا إلى المعدل ويكتب إليه كتابا فيه اسم الشاهد ونسبته ومحلته ومسجده فيسئل عن جيرانه وأصدقائه فإذا عرفهم بالعدالة يكتب هو عدل وإذا عرفهم بالفسق يكتب والله أعلم بحاله أو لا يكتب شيئا احترازا عن كشف الستر وإذا لم يعرفهم بالعدالة أو بالفسق يكتب هو مستور ويرده إلى القاضي سرا كيلا يظهر فيخدع]

(मजम उल अनहुर)

स्पष्ट है कि तजकिया-ए-सिर की परिभाषा वोट पर फिट नहीं हो रही है, क्योंकि यहां कोई काजी ही नहीं है। और न ही कोई उन प्रत्याशियों के बारे में ज्ञान प्राप्त करने जाता है। बल्कि आधार वह बातें होती हैं, जो प्रत्याशी स्वयं अपने बारे में कहे, और जनता में अपने कार्य गिनाए। एवं स्वयं मुअद्दिल (ताजकिया करने वाला) में अदालत होनी चाहिए, और यहां वह मौजूद नहीं है। हर प्रकार के व्यक्ति को वोट देने का अधिकार है। इन सभी बातों के कारण वोट को तज़किया-ए-सिर कैसे कहा जाए। अगर स्वीकार कर लें कि वोट तज़किया-ए-सिर है, तो भी यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि तज़किया-ए-सिर को फ़ुकहा ने शहादत नहीं कहा है। बल्कि उसमें एक आदिल की खबर भी काफी है। बात शहादत(गवाही) को लेकर चली थी।

[لأن التزكية من أمور الدين فلا يشترط فيها إلا العدالة حتى تجوز تزكية العبد والمرأة والأعمى والمحدود في القذف]

(मजमा-उल-अन्हुर)

तजकिया-ए-अलानियह:

والتزكية في العلانية أن يجمع القاضي بين المعدل والشاهد في مجلسه لتنتفي شبهة تعديل غيره

(मजमा-उल-अन्हुर)

वोट तजकिया-ए-अलानियह भी नहीं है, क्योंकि यहां दोनों तज़कियों के बीच में जो अंतर है, कि तज़किया करने वाला और गवाह दोनों कजा की मजलिस में आए, और मुजक्की की हैसियत से गवाह के बारे बताए, नहीं पाया जा रहा है। इसके लिए मजलिसे कजा का होना जरूरी

है, और वह यहां मौजूद नहीं है, एवं यह बात भी है कि इसको फुकहा ने शहादत नहीं कहा है। वोट को तजकिया कहना भी किसी प्रकार ठीक नहीं है, कि दोनों के बीच में बहुत बड़ा अंतर स्पष्ट है।

सभी अंतरों को छोड़कर यदि वोट को तज़किया कह भी दिया जाए, तो भी बात नहीं बनती। इससे अधिक से अधिक प्रत्याशियों की योग्यता का सबूत होगा। पद की प्राप्ति फिर भी ज़रूरी नहीं होगी। जबकि वोट के द्वारा पद मिलना एक बिल्कुल यक़ीनी बात है।

दूसरा अंगः- दूसरे के हक की खबर देना

शहादत, गवाही की परिभाषा का दूसरा अंग है, दूसरे के हक की खबर देना। अर्थात जिस हक की गवाही दी जा रही है, वह पूर्ण रूप से दूसरे का हो। इसीलिए इकरार, इनकार और असील के दावा को शहादत नहीं कहा जाता है। क्योंकि वह स्वयं के बारे में खबर देना है। उसी तरह वकील के दावा को भी शहादत नहीं कहा जाता है, जबकि एक तरह से वह दूसरे के लिए दावा है, लेकिन चूंकि वह असील का तरजमान है, तो उसका दावा ऐसा है जैसा कि असील स्वयं ही मुद्दई हो।

[للغير أي حصل للغير من كل الوجوه كما هو المتبادر فيخرج عنه الإنكار فإنه إخبار لنفسه وكذا دعوى الأصيل فإنه إخبار به لنفسه في يد غيره وكذا دعوى الوكيل فإنه ليس بإخبار للغير من كل الوجوه]

(मजमा-उल-अन्हुर)

इसी कारणवश गवाही की शर्तों में यह बात बताई गई है, कि उस गवाही से गवाह का कोई लाभ या हानि संबंधित न हो।

ا:[وأن يشهد لله تعالى ولا يجر الشاهد إلى نفسه مغنما ولا يدفع عن نفسه مغرما.]

(अल-हिंदिया)

और वोट में स्वयं वोट देने वाले का लाभ और हानि इस काम से संबंधित है, अतः वोट को गवाही कहना ठीक नहीं हुआ।

तीसरा भाग मजलिसे कज़ा:

शहादत की परिभाषा का एक अंग मजलिसे कजा का होना है, और यह गवाही की शर्तों में से है।

चुनांचे रद्दुल मुहतार में

[:وما يرجع إلى مكانها واحد وهو مجلس القضاء].

वोट देने में काजी ही कोई नहीं होता, तो मजलिसे क़जा का क्या सवाल है, यहां तो वोटर स्वयं गवाह भी है, मुज़क्की भी है, और क़ाज़ी भी है।

राह भी तू रहरव भी तू रहबर भी तू मंज़िल भी तू।

चौथा अंग शहादत का शब्द:

शहादत (गवाही) की परिभाषा का एक अंग शहादत (गवाही) का शब्द भी है। अर्थात कोई खबर उस समय शहादत बनेगी, जबकि उसे शहादत के शब्द से अदा किया जाए, इसके महत्त्व के लिए यह बात काफी है, कि यह शरई शहादत का रुकन है, शहादत के अर्थ वाले अन्य शब्द भी इस में स्वीकार नहीं किए जाते हैं, बल्कि शहादत मस्दर (verb) का माजी (भूतकाल) भी शहादत के लिए काफी नहीं होगा।

इबारात देखिए:

[وشرطها لفظ الشهادة في جميع ما تقدم لورود عبارة النص كذلك ولكونه من ألفاظ اليمين فكان الامتناع عن الكذب بهذا اللفظ أشد]

(मजमा उल अन्हुर)

[وأما ركنها فلفظ أشهد بمعنى الخبر دون القسم]

(अल हिंदिया)

[وركنها لفظ أشهد لا غير لتضمنه معنى مشهادة وقسم وإخبار للحال فكأنه يقول أقسم بالله لقد اطلعت على ذلك وأنا أخبر به،وهذه المعاني مفقودة في غيره حتى لو زاد فيما أعلم بطل للشك]

(रद्दुल मुहतार)

[جرى على ألسنة الأمة سلفها وخلفها في أداء الشهادة أشهد مقصرين عليه دون غيره من الألفاظ الدالة على تحقيق الشيئ نحو أعلم وأتيقن،وهو موافق لألفاظ الكتاب والسنة أيضا فكان كالإجماع على تعيين هذه اللفظة دون غيرها،ولا يخلو عن معنى التعبد،إذ لم ينقل غيره]

(अल बहरूर राइक)]

الشهادة اسم من المشاهدة وهي الاطلاع على الشيئ عيانا فاشترط في الأداء ما ينبئ عن المشاهدة واختصت بشيئ يدل على ذلك وهو ما اشتق من اللفظ وهو أشهد بلفظ المضارع،ولا يجوز شهدت،لأن الماضي موضوع للإخبار عما وقعت نحو قمت أي فيما مضى من الزمان،فلو قال شهدت احتمل الإخبار عن الماضي،فيكون غير مخبر به في الحال]

(अल बहरूर-राइक)

अब वोट को देखिए, जबकि इसमें शब्दों का कोई अस्तित्व ही नहीं है, तो शहादत के शब्दों की बात ही अलग है, तो फिर कैसे वोट को शहादत घोषित किया जाए, अगर कोई कहे कि मशीन का बटन दबाना या निशान लगाना अशहदु (मैं गवाही देता हूं) के समान है, तो उसका उत्तर स्पष्ट है, कि जब आलमू (मैं जानता हूं) अतकनु (मुझे विश्वास है) जैसे शब्द बल्कि शहादत के भूतकाल का शब्द शहिदतु (मैंने गवाही दिया) को भी इस बाब में स्वीकार नहीं किया गया, तो जिसमें बिल्कुल शब्द का अस्तित्व ही न हो उसको कैसे स्वीकार कर लिया जाएगा, उसके कारण से उसे शहादत कैसे घोषित किया जा सकता है।

शरई शहादत के अंगों में से कोई भी अंग वोट में नहीं पाया जा रहा है, तो फिर वोट को शहादत कहना और फिर उसपर वही वादा, वईद लागू करने का क्या अर्थ है।

इसके अलावा शहादत की योग्यता के लिए पूर्ण बुद्धिमान होना, देखने वाला होना, जिस चीज की गवाही दी जा रही है उसका अवलोकन करना, कुछ मुस्तस्ना स्थानों के अलावा हर जगह ज़रूरी है। जबकि वोट देना सबके लिए जरूरी है। एवं शहादत की अदाएगी के लिए बुद्धि, वयस्कता, आजाद होना, देखने वाला होना, बोलने वाला होना, विलायत और महदूद फिल कज़फ न होना, कोई दुनियवी दुश्मनी न होना, वंश और दंपति का संबंध न होना, शर्त है। (तफसील के लिए फतावा हिंदिया रद्दुल मूहतार इत्यादि देखें) जबकि सभी वोटरों का इन सभी शर्तों पर पूरा उतरना हमारे युग में असंभव है, एवं शहादत में गवाह का आदिल होना जरूरी है और यहां फसिकों की भरमार है।

शहादत का यह हुक्म बयान किया गया है, कि क़ाज़ी पर शहादत से जो बात साबित हो, उसके अनुसार फैसला करना वाजिब है। और यहां क़ाज़ी बिल्कुल मौजूद ही नहीं है, बल्कि वोट या वोटर खुद ही क़ाज़ी है, अगर काल्पनिक रूप से क़ाज़ी मान भी लें, तो सभी प्रत्याशियों के वोटरों का वोट शहादत होगा, तो इस स्थिति में शहादतों का मतभेद ही शहादत को स्वीकार करने के लिए रुकावट होगा, और यदि हर एक के लिए अलग-अलग कजा मान लिया जाए, तो सभी के हक में बहुत सी शहादतें पाई जाएंगी, फिर एक ही पद के कई अधिकारी साबित होंगे, और यह बातिल है। और अगर मशहुद अलैह (जिसके लिए गवाही दी जा रही है) मुसलमान हो, तो गवाह का भी मुसलमान होना शर्त है। जबकि वोट में मुस्लिम प्रत्याशी के हक़ में काफिर का वोट वैध समझा जाता है। और सब का वोट एक समान समझा जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है, कि वोट को किसी भी तरह शहादत घोषित करना सही नहीं है। क्योंकि उपर्युक्त कारणों में से मात्र एक उपस्थित हो, तो वोट को शहादत की परिभाषा से बाहर करने के लिए काफी है। और अगर सारे कारण इकट्ठा हो जाएं तो क्या कहना।

सूचना:- शहादत के लुगवी अर्थ के अनुसार वोट को शहादत कहना ठीक हो सकता है, लेकिन आलिमों से विद्वानों से यह बात गुप्त नहीं होगी, कि शरीयत का हुक्म बताते समय सिर्फ लुगवी अर्थ का ध्यान रखना और शरई अर्थ और हैसियत को अनदेखा कर देना कितना हानिकारक हो सकता है।

वोट शफाअत(सिफारिश) की हैसियत से:

वोट की दूसरी हैसियत जो मुफ्ती महोदय ने घोषित की है, वह शफाअत की है।

चुनानचे कहते हैं।

" दूसरी हैसियत वोट की शफात अर्थात सिफारिश की है, कि वोटर इस प्रतिनिधित्व की सिफारिश करता है इसके बारे में कुरआन का यह आदेश हर वोटर को अपने सामने रखना चाहिए।

من يشفع شفاعة حسنة الخ

अच्छी सिफारिश यही है, कि योग्य दीनदार व्यक्ति की सिफारिश करें। जो अल्लाह के मखलूक के हुक़ूक़ भली-भांति अदा करे। और बुरी सिफारिश यह है कि अयोग्य फासिक ज़ालिम की सिफारिश करके अल्लाह के मखलूक पर उसको मुसल्लत कर दे। इससे पता चला की हमारे वोटों से सफल होने वाला व्यक्ति अपने पांच वर्ष के शासन काल में जो भी अच्छा या बुरा काम करेगा, हम भी उसके शरीक समझे जाएंगे।

वोट के शफाअत होने पर नजर

शफाअत कहते हैं, किसी के लिए अपना प्रभाव, आकर्षण ऐसे प्रयोग करना, कि किसी लाभ तक पहुंचाने या किसी हानि से बचाने के लिए बीच में पड़कर माध्यम की भूमिका निभाया जाए।

[والشفاعة هي التوسط بالقول في وصول الشخص ولو كان أعلى قدرا من الشفيع إلى منفعة من المنافع الدنيوية والأخروية أو خلاصه عن مضرة]

(रुहुल मआनी)

[الشفاعة مأخوذة من الشفع وهو أن يصير الإنسان نفسه شفعا لصاحب الحاجة حتى يجتمع معه على المسألة فيها]

(मफातीहुल गैब)

الشفاعة فيها معنى السؤال والتقاضي للإجابة

(फतहुल बारी)

सिफारिश में एक शफीअ(सिफारिश करने वाला), एक मशफूअ इलैह, (जिसके पास सिफारिश किया जाए) और एक मशफूअ लह, (जिसके लिए सिफारिश किया जाए) होते हैं। सिफारिश करने वाले की हैसियत केवल एक माध्यम की होती है। मूल काम मशफू इलैह (जिसके पास सिफारिश की जाए) का होता है। वह चाहे तो सिफारिश स्वीकार करे, और चाहे तो रद कर दे।

वोट को यदि शफाअत या सिफारिश कहा जाए, तो वोटर की हैसियत शफीअ सिफारिश करने वाले की, उम्मीदवार की मशफूअ लह (जिसके लिए सिफारिश किया जाए) की होगी, और जो असल है मशफूअ इस्लैह वह यहां है ही नहीं। अतः वोट को सिफारिश कहना कैसे ठीक हुआ।

फिर मशफूअ इलैह को दोनों जानिब का अधिकार है, कि स्वीकार करे, या रद करे। और यहां केवल एक ही पहलू है। (बहुमत को स्वीकार करना) इसके अलावा कोई चारा नहीं।

-(आगे शर्तों के बयान में थोड़ा और स्पष्ट किया जाएगा)

एवं सिफारिश की कुछ शर्ते हैं:

१ सिफारिश जायज हक के लिए हो, नाजायज हक के लिए नहीं।

वोट की मांग जिस पद के लिए की गई, वह अधिकांश लोगों के हक में नाजायज हक ही साबित हुआ है, जो दिन के उजाले की भांति स्पष्ट है।

२ सिफारिश चाहने वाला अपनी मांग को कमजोरी के कारणवश खुद से बड़े लोगों तक न पहुंचा सकता हो,

यहां ऐसा कुछ नहीं पाया जाता है, इसलिए कि आजकल तो मशीनी वोट का जमाना है, और जो चाहे उसमें परिवर्तन कर दे कोई पूछने वाला नहीं है, निर्वाचन अभियान तो केवल धूल झोंकने का साधन है।

३ सिफारिश करने वाला अपनी सिफारिश को स्वीकार करने पर उस बड़े व्यक्ति को मजबूर न करे, जिससे वह सिफारिश कर रहा है।

यहां वैसे तो मैशफूअ इलैह होता ही नहीं है, अगर मान भी लें तो बहुमत मजबूर करने की श्रेणी में से है, जो कि जायज नहीं है।

४ सिफारिश करने वाला वह सिफारिश मात्र अल्लाह की रिजा के लिए करे, उससे उसका कोई लाभ संबंधित न हो, अबू दाऊद की रिवायत है, हजरत अबू उमामा रजियल्लाहु अन्ह कहते हैं, कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फरमाया, जिसने अपने भाई के लिए सिफारिश की, उसने बदले में सिफारिश करने वाले को कोई उपहार दे दिया, और दूसरे ने स्वीकार कर लिया, तो वह सूद के दरवाजों में से एक बड़े दरवाजे में प्रवेश कर गया। (सुनन अबी दाऊद)

स्पष्ट है, कि यहां वोट देने वाले अपने लाभ को ध्यान में रखकर ही वोट देते हैं, न कि मशफूअ लह के लाभ को देखकर, तो वोट को सिफारिश कहना कैसे सही हुआ। (सिफारिश की शर्तें अल-मसाइलुल मुहिम्मा, अंफासे ईसा इत्यादि से लिए गए हैं)

सारांश यह है कि, वोट को सिफारिश कहना भी ठीक मालूम नहीं होता। क्योंकि दोनों के बीच में बहुत अंतर पाया जा रहा है।

वोट वकालत की हैसियत से

वोट की एक हैसियत मुफ्ती साहब ने वकालत घोषित की है। चुनांचे लिखते हैं।

"वोट की तीसरी हैसियत वकालत की है, कि वोट देने वाला उस उम्मीदवार को अपना प्रतिनिधि और वकील बनाता है, लेकिन यह वकालत किसी व्यक्तिगत हक से संबंधित होती, तो उसका लाभ, हानि केवल उसी को पहुंचता, तो उसका यह खुद जिम्मेवार होता, मगर यहां ऐसा नहीं है। क्योंकि यह वकालत ऐसे अधिकारों से संबंधित है, जिन में उसके साथ पूरी कौम शरीक है। इसलिए अगर किसी अयोग्य को अपना प्रतिनिधित्व के लिए वोट देकर सफल बनाया, तो पूरी कौम के अधिकारों के हनन का पाप भी उसकी गर्दन पर रहा।

वोट के वकालत होने की हैसियत पर एक नजर:

वकालत की परिभाषा:--

[إقامة الغير مقام نفسه في تصرف معلوم]

(मुल्तकल अब्हुर)

उसके शराइत और अरकान कुछ इस प्रकार हैं:

[وشرطها كون المؤكل ممن يملك التصرف]

(मुल्तकल अब्हुर)

[وأما الشرائط فأنواع....أما الذي يرجع إلى المؤكل فهو أن يكون ممن يملك فعل ما وكل به نفسه]

(बदाइउस सनाइअ)

[وأما ركنها فالألفاظ التي تثبت بها الوكالة من قوله وكلتك ببيع هذا العبد]

(अल हिन्दियह)

इन इबारतों और वकालत के बाब में आए हुए इन जैसी इबारतों से यह बात स्पष्ट है, कि वोट को वकालत कहना भी ठीक नहीं है।

इस इजमाल की तफसील यह है, कि वकालत पाए जाने के लिए जरूरी है, कि मुवक्किल खुद भी उस तसर्रुफ के करने का अधिकार रखता हो, जिसका उसने वकील बनाया है। जबकि यहां वह बात नहीं है, इसलिए कि वोटर खुद हुकूमत का बाग डोर संभालने पर कादिर नहीं है, अतः किसी दूसरे को कैसे सौंप सकता है।

एक संदेहः- यहां अगर कोई एतराज करे कि लोकतंत्र नाम ही उस राज व्यवस्था का है जिसमें जनता के हर व्यक्ति को सत्ता और हुकूमत का अधिकार है, और उसी अधिकार का वह अपने प्रतिनिधियों को मालिक बनाता है, क्योंकि लोकतंत्र जनता की हुकूमत का नाम है।

संदेह का जवाब यह है कि पहले भी मौलाना यूसुफ लुधियानवी रहिमहुल्लाह के वास्ते से यह बात आई है, कि जनता की हुकूमत और उसकी प्रतिनिधित्व का वास्तविक अर्थ क्या होता है, और लोकतंत्र में उसका क्या अर्थ लिया जाता है, एवं यह बात बुद्धि के भी विपरित है, कि हर व्यक्ति को हुकूमत का अधिकार हो, क्योंकि यदि सब ही हाकिम होंगे, तो महकुम कौन होगा। क्या पत्थर, वृक्ष होंगे? और ऐसा नहीं है। तो जिन लोगों को जनता ने अपना प्रतिनिधि बनाया है, वह हाकिम हुए, और जनता महकूम हुए। फिर तो महकुम होने के कारणवश जनता के हाथ से अधिकार जाता रहा। क्योंकि हाकिमियत उसको कहते ही हैं, कि किसी व्यक्ति का दुसरे की मर्जी की परवाह किए बिना हाकिमाना अधिकार प्रयोग करना, या दूसरे पर हुक्म लागू करना।

अब यदि वोट को वकालत कहा जाए, तो मुवक्किल (वोटर) शुरुआत में इस चीज का अधिकार रखता है, (वास्तव में नहीं बल्कि हुक्मन) लेकिन उसी व्यक्ति द्वारा उसका अधिकार छीन लिया जाता है। जिसे उसने खुद अधिकार दिया था, यह नया तर्क भी विश्व के सामने लोकतंत्र के कारण आया है।

वकालत में अलफाजे तौकील (वकील बनाने के लिए प्रयोग किए जाने वाले शब्द) रुक्न का दर्जा रखते हैं। वोट को वकालत घोषित करना कैसे सही होगा, जबकि यहां कोई शब्द बिल्कुल है ही नहीं।

वोट अगर वकालत है, तो उसका लाभ मुवक्किल को मिलना चाहिए। प्रत्याशी के जीतने की स्थिति में सत्ता का पद वोटर को मिलना चाहिए। जैसे वकील बिल-बैअ को बेचने के बाद जो रुपए पैसे प्राप्त होगा, वह मुवक्किल का होगा, न कि वकील का। चुनांचे दुर्रे मुख्तार में है।

[والملك يثبت للمؤكل ابتداء في الأصح فلا يعتق قريب الوكيل بشرائه ولا يفسد نكاح زوجته به

(अल्दुर्रुलमुखतार)

वकालत मुवक्किल की मौत से बातिल हो जाती है, और यहां यह बात नहीं होती है, क्योंकि वोट देने के बाद यदि वोटर की मृत्यु भी हो जाए, तो भी उसका वोट गिना जाता है। प्रत्याशियों की सफलता में उसका वोट ज़िंदों के वोट की भांति भूमिका निभाता है। तो वोट और वकालत में क्या संबंध है।

[وتبطل الوكالة بموت المؤكل] (मुल्तकलअब्हुर)

एवं वकालत मुवक्किल की अस्तित्व तक सीमित रहती है, क्योंकि दूसरों पर तसर्रुफ बिना शरई विलायत के प्राप्त नहीं हो सकता, और यहां सफल प्रत्याशी के वोटर का तसर्रुफ दूसरों के वोटरों पर भी स्थापित हो रहा है, अतः वोट को वकालत कहना कैसे सही हुआ।

अंत में यह कि वोट एक ही समय में शहादत और वकालत दोनों कैसे हो सकता है, क्योंकि शहादत इखबार (अतीत की खबर देना) है, और वकालत इंशा (भविष्य में उत्तपन्न करना) है। और शहादत (गवाही) हर दिशा से गैर के हक से संबंधित है, और वकालत अपने हक से, तो शहादत से पता चलता है, कि वोट उम्मीदवार का हक है, गवाह (अर्थात वोटर) का उसमें कोई हक नहीं है। और वकालत से पता चलता है कि उसमें असल वोटर का हक है, उम्मीदवार का हक नहीं है, यह तो दो विपरीत का इकट्ठा होना है, जो कि असंभव है।

वोट के मशवरा होने की हैसियत पर एक नजर

कुछ लोग वोट को मशवरा कहते हैं, ऊपर के विवरण से ही उसका रद हो जाता है, क्योंकि मशवरा में अमीरे मशवरा का होना जरूरी है। एवं मशवरा का अमीर निर्णय लेने में स्वयं पूर्ण अधिकार रखता है, अल्पमत, बहुमत का पाबंद नही होता, और यहां यह दोनों आत्माएं गायब हैं।

निम्न में मौलाना अशरफ अली थानवी रहिमहुल्लाह की किताब से एक अंश नकल करना उचित होगा, जो मौलाना ने उन लोगों से संबंधित लिखा है, चुनांचे लिखते हैं

"कुछ लोगों को यह मूर्खता सूझी, वह लोकतंत्र को इस्लाम में ठूंसना चाहते हैं। और दावा करते हैं, कि इस्लाम में जम्हूरियत (लोकतंत्र) की शिक्षा है, और दलील में यह आयत पेश करते हैं, وشاورهم في الأمر मगर यह बात बिलकुल गलत है। उन लोगों ने मशवरा की दफआत ही को हटा दिया, और इस्लाम में मशवरा का जो दर्जा है, उसको बिलकुल नहीं समझा। इस्लाम में मशवरा का दर्जा यह है, कि एक बार हुजूर पाक सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हजरत बरीरा रजियल्लाहु अंहा से फरमाया था, कि ऐ बरीरा तुम अपने पति से रुजू कर लो

वाकिया यह हुआ, कि हजरत बरीरा रजियल्लाहु अंहा पहले बांदी थीं, और उसी स्थिति में उनका निकाह एक व्यक्ति से जिनका नाम मुगीस था, उनके आका ने कर दिया था, जब वह आजाद हुईं, तो इस्लामी कानून के अनुसार उनको यह अधिकार दिया गया, कि जो निकाह गुलामी की स्थिति में हुआ, अगर चाहें उसको बाकी रखें, और यदि चाहें फस्ख कर दें, शरीयत की इस्तिलाह में इसको खियारे इत्क कहते हैं। इस इख्तियार के कारणवश हजरत बरीरा ने पूर्व के निकाह को फस्ख कर दिया। लेकिन उनके पति को उनसे प्रेम था, वह जुदाई के गम में मदीना की गलियों में रोते फिरते थे। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को उस पर दया आया, और हजरत बरीरा से आपने फरमाया बरीरा क्या अच्छा हो, यदि तुम अपने पति से रूजू कर लो। वह पूछती हैं। ऐ अल्लाह के रसूल! यह आपका आदेश है या एक मशवरा है ،यदि हुक्म है तो मुझे हर हाल में स्वीकार है, चाहे मुझे दुःख ही क्यों न हो। आपने फरमाया हुक्म नहीं, केवल मशवरा है। तो हजरत बरीरा ने स्पष्ट कहा। यदि मशवरा है तो मैं इसको स्वीकार नहीं करती। लीजिए इस्लाम में मशवरा का यह दर्जा है, कि अगर नबी और खलीफा भी प्रजा के किसी व्यक्ति को मशवरा दे, तो उसको अधिकार है, कि मशवरा पर अमल न करे, यह केवल नाम का अधिकार नहीं है, बल्कि वास्तव में उसका यह अधिकार है। चुनांचे हजरत बरीरा रजियल्लाहु अंहा ने नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के मशवरा पर अमल नहीं किया, तो नबीसल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम उनसे जरा भी अप्रसन्न नहीं हुए, और न ही हजरत बरीरा को कोई पाप हुआ, तो जब उम्मत या प्रजा अपने नबी या राजा के मशवरा पर अमल करने लिए इस्लाम में बाध्य नहीं है, तो नबी या खलीफा प्रजा के मशवरा से क्यों मजबूर हो जाएगा, कि प्रजा जो मशवरा दे उसी पर ज़रूर अमल करे, उसके

खिलाफ कभी न करे। तो وشاورهم في الأمر से केवल यह साबित हुआ, कि शासकगण प्रजा से मशवरा कर लिया करें। यह कहां साबित हुआ कि उनके मशवरा पर अमल भी जरूर कर लिया करें। यदि बहुमत राजा के राय के खिलाफ हो जाए तो वह बहुमत के मशवरा पर अमल करने के लिए मजबूर है। और जब तक यह साबित न हो, उस समय तक وشاورہم فی الامر से लोकतंत्र बिल्कुल भी साबित नहीं हो सकता। (अश्रफुल जवाब)

सारांश यह है कि उपर्युक्त तफसीलात के आधार पर वोट को शहादत, वकालत इत्यादि की हैसियत देकर, इस्लामी कहना और शरई फर्ज घोषित करना तो ठीक नहीं हुआ।

अंतिम बात

यह प्रश्न फिर भी रह जाता है, कि वोट का शरई हुक्म क्या है, उसका जवाब अगरचे पूर्व के लेख से खुद ही स्पष्ट है, या निकाला जा सकता है, लेकिन फिर भी स्पष्ट करना जरूरी है। वोट को शरीयत बनाना तो बिलकुल सही नहीं है, रही बात उसके नाजायज और हराम होने के बावजूद اہون البلیتین के अंतरगत उसके जायज होने की, तो जायज होना भी इस बात पर आधारित था, कि अगर वोट न दिया जाए, तो मुसलमानों को हानि हो सकती है, हानि को दूर करना कारण था।

लेकिन हमारे ज़माना में चूंकि मामला बिल्कुल बदला हुआ है, पहली बात तो यह है कि प्रत्याशियों में कोई ऐसा नहीं है, जिसको मजबूरन वोट देकर सत्ता में लाया जाए, तो वह मुसलमानों के लिए लाभदायक साबित हो, और यदि यह स्वीकार करें कि कम से कम अत्याचार में कमी का माध्यम बनेगा, यह बात भी उस समय होगी, कि वह सत्ता में आए भी, और उस प्रकार की भूमिका निभाए भी, अन्यथा भारतीय मुसलमानों की यह स्थिति है, कि एक फरीक सामने से और दूसरा पीछे से हमला कर रहा है।

क्योंकि देश एक ऐसे गिरोह के हाथों सिमट कर रह गया है, कि वह जिसे चाहें सत्ता पर बैठाएं, जिसे चाहें हटाएं, निर्वाचन तो मात्र एक ड्रामा है। अन्यथा पर्दा के पीछे मामला कुछ और है, जो बुद्धिमानो से गुप्त नहीं है। अतः हुक्म यह है कि भारतीय मुसलमानों को विशेषतः और पूरे विश्व के मुसलमानों को सामान्यतः इस कुक्रिया व्यवस्था से विमुखता प्रकट करते हुए, इस्लामी

खिलाफत की व्यवस्था की ओर धीरे-धीरे बढ़ना चाहिए। इस मामला में अफगानिस्तान के दुर्वेशों से सीख प्राप्त करनी चाहिए। अन्यथा भविष्य अंधकार से अंधकार होता चला जाएगा।